International Journal of Advance and Applied Research
www.ijaar.co.in
ISSN – 2347-7075 Impact Factor – 7.328
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol.9 No.6 July – Aug 2022

मधु काँकरिया कृत 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास में चित्रित धार्मिक आडम्बर

दया शंकर यादव[1] प्रीती यादव[2]
सहयोगी, एम.ए.,बी.एड्,सेट (हिन्दी)
***Corresponding Author*- दया शंकर यादव**
Email- dyadavdayashankar@gmail.com
DOI- 10.5281/zenodo.7070815

सारांश

इक्कीसवीं सदी की लेखिका मधु काँकरिया ने महिला लेखन परंपरा में अपना अनोखा स्थान स्थापित किया है। अपने साहित्यिक विषयों का चयन अन्य महिला लेखन की तुलना में चुनौती भरा किया है। केवल नारी विमर्श तक ही अपनी कलम नहीं चलाई तो, सामाजिक जीवन के मौलिक प्रश्नों को संवेदनशील रूप में न्याय देने का प्रामाणिक प्रयास करनेवाली सजग और वैज्ञानिक दृष्टी को अपनानेवाली लेखिका के रूप में आज हिंदी साहित्य के पाठकों के मन पर राज कर रही है। ऐसा ही चर्चित उपन्यास 'सेज पर संस्कृत' है, जो सन २००८ में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने जैन धर्म में बढ़ते आडम्बर तथा पाखंडा का स्वरुप यथार्थ रूप में चित्रित किया है। खुद जैन धर्म से तालुक रखनेवाली लेखिका ने जैन धर्म में चलते धार्मिक आडम्बरों को बचपन से देखा और भोगा भी है। इसलिए उनके धार्मिक चिंतन को मौलिकता प्राप्त होती है। राजेंद्र यादव इसी कारण उनके लेखन संदर्भ को कहते हैं - "मारवाड़ी लेखिकाओं में महत्वपूर्ण नाम मन्नू भंडारी, प्रभा खेतान, अलका सरावगी और मधु काँकरिया का नाम है। इन सबके लेखन की पृष्ठभूमि अलग है, लेकिन मधु काँकरिया ने राजस्थान मारवाड़ी समाज की रूढ़ियों अंधविश्वास नजरिए और गद्दी पर बैठकर पैसा कमाने की वृत्ती से अलग निकलकर रचना कर्म किया है।"१ इसलिये प्रस्तुत लेख से लोग धर्म के नाम पर कौन-से आडंबर करते है? धार्मिक आडंबर के चलते समाज मे जागरूकता संभव है या नही? जैन धर्म के धार्मिक संस्कृती का ओढा हुवा चोला कैसा है? क्या वर्धमान महावीर की शिक्षा सचमुच इतनी सूक्ष्मता से अहिंसावाली थी? आदि सवालों के चिंतन 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास करता हुआ परिलक्षित होता है।

प्रस्तावना

मधु कांकरिया मारवाडी समाज की होने के कारण जैन धर्म की संस्कृति, विधि-प्रविधि, परंपरा-प्रथाओं को काफी करिबी से देखा और परखा भी है। जैन धर्म के सिद्धांत और व्यावहारिक जीवन में कोई भी तालमेल न होने के कारण लेखिका धर्म की ऐसी आडंबर स्थिती से चिंतित है। उपन्यास में चित्रित शिखरजी पर कई साधू, साध्वियाँ और कई श्रद्धालु लोग दर्शन लेने के लिए आवाजाही करते है। इसके लिए काफी धन, पैसा बरबाद भी किया जाता है, लेकिन गरीब-भूखे लोगों पर इन धार्मिक अंधों भक्तों का ध्यान नही जाता। इसलिये लेखिका इस आडंबर से आहत होकर काफी संवेदनशीलता से कहती है- "यह कैसा धर्म जिसे करोड़ों लोगों की भूख, गरिबी, अन्याय, लाचारी और शोषण नजर नहीं आता और जो इसके लिए कुछ करने के बजाय महज यथास्थिती के पर्दे में मुँह छिपा कर सोता रहता है। शिखरजी (जैन धर्म का धार्मिक स्थल) के पहाड़ी रास्ते रोगी, कोढ़ी, भूखे, नंगे, लुलो, लंगड़ों की पूरी लड़खड़ाती दुनिया तीर्थ यात्रियों की भीख की राह देखती।"२

लेकिन ऐसे धार्मिक स्थल से महाराज, साध्वियाँ गुजरती है मगर इन दीन हीन लोगों की कोई मदत नहीं करता है। श्रद्धा के नाम पर कदम-कदम पर मंदिरों का निर्माण कार्य तेजी से होने की कगार पर है। लेकिन ज्ञान का दीपक जलाने वाले स्कूल और रोगियों का इलाज करने के लिए कोई अस्पताल नहीं मिलता है। यह कितनी विडम्बना है की जो मनुष्य के लिए आवश्यक है वह नहीं और जिसकी आवश्यकता नहीं वह धर्म के नाम पर आडंबन बना है। लेखिका इन धर्म व्यवस्था कि पाखंडी संस्कृति से पूछती है कि क्या होगा इन मंदिरों का ? धर्म नगरी की यात्रा और यहाँ के धर्म द्वारा मानवीय जीवन की उपेक्षा का दृश्य देखकर लेखिका काफी विचलित होती है। इक्कीसवी सदी में पदार्पण कर जाने के विज्ञान के ज्ञान के बाद भी भारतीय जन मानस खुद को धर्म से, धार्मिक कर्मकांडों से, धार्मिक व्यक्तित्वों से अलग नहीं कर सका है।

धर्म या धर्मगुरु पर लगनेवाला कोई भी आरोप उसके समर्थकों के विश्वास को खंडित करता है। इसलिए धर्म तथा धर्मगुरुओं के पाखंडों पर बड़ी चालाकी से अविज्ञान तथा अज्ञान का पर्दा डाला जाता है। उपन्यास की नायिका संघमित्रा इन सभी आडम्बरों को बखूबी से पहचानती है। इसलिए वह अपनी माँ और छोटी बहन की दीक्षा रोकना चाहती है। उसके मतानुसार आडम्बरों से भरा धर्म मानवीय जीवन को मुक्ति नहीं दे सकता, वह केवल धोखा है। इसलिए जैन धर्मगुरु महाराज से कड़वा और वैज्ञानिक सवाल पूछती है- "क्षमा चाहती हु महाराज ..... पर यह आपकी दुनिया खद्दर के निचे मुलायम सिल्क पहनने वालों की है। यह सेज पर संस्कृत बोलनेवालों की दुनिया है। अहिंसा प्रधान आपके धर्म में धोखाधड़ी, जमाख़ोरी, टैक्सचोरी, स्मगलिंग, बालशोषण, स्त्रीशोषण, श्रम शोषण जैसे जघन्य आर्थिक अपराधों को पाप समझा नहीं जाता औरतो और नकली दवा बेचनेवालों और खाद्यान्नों में मिलावट करनेवालों के दुष्कर्म को भी पाप घोषित नहीं किया जाता है। पाप के हाथियों को यहाँ खुला गेट पास दिया जाता है और लोगों को समझाया जाता है की आप है, हरी सब्जी खाने में, अनछाना पानी पिने में, गाजर, मूली, आलू, प्याज खाने में, सूर्यास्त बाद के खाने में ..... , खुले मुँह बोलने से में क्योंकि इससे जीवों की हत्या होती है। आपका धर्म इंसानो में नहीं, जीवजंतुओं में ज्यादा दिलचस्पी रखता है, कीड़ों-मकोड़ों को ही समर्पित है यह।

मनुष्य के मनुष्यत्व में जो कीड़े लगे है, उसकी आपको फिक्र नहीं है।"३ इससे लेखिका की जैन धर्म के परिप्रेक्ष्य में उनके चिंतन की सेज नजर आती है, जो अधिक वैज्ञानिक है। इसके साथ ही जैन धर्म के 'संथारा वृत' की भी लेखिका कड़ी आलोचना करते हुए कहती है की जिसमे अन्न के साथ-साथ पानी तक त्याग दिया जाता है। धार्मिक, श्रद्धालु, व्यक्ति को छटपटाते हाय-तौबा मचाते, प्राणांतक पीड़ा सहते मोक्ष तक पहुंचा जाता है।

मधु काँकरिया जैन धर्म के व्यवहार तथा व्यापरवादी दीक्षांत समारम्भ के आडंबर को भी यथार्थ रूप में चित्रित करती है। दीक्षित व्यक्ति के जैन धर्म की दुनिया का रास्ता खुलता तो आसानी से है, पर एक बार इस पर चलनेवाला वापस लौट पाता नहीं है। इसलिए यह व्यापारवादी धर्म इंसान को ईश्वर से जोड़ने की आड़ में इंसान को इंसान से तोड़ता है। संघमित्रा की माँ और छोटी बहन अपनी आर्थिक तंगहाली से प्रताड़ित होकर धर्म का हाथ पकड़कर साध्वी धर्म की दीक्षा लेती है। संघमित्रा दोनों की भी दीक्षा रोकने के लिए कड़ी मेहनत करती है, लेकिन असफल होती है।

इसलिए अपनी अवसरवादी माँ को उसके आडम्बरवादी धार्मिक भूमिका के परिप्रेक्ष्य में संघमित्रा कहती है - "तुम्हे लगता है कि तुम अपने बुते हमारे लिए पति का जुगाड़ नहीं कर पाओगी तो इन्हे धर्मरूपी पति के हवाले कर दो। पर हमें न पति

चाहिए न धर्म। हमें बस थोडासा भरोसा दो जिससे हमारे पंखों को मजबूती मिल जाये; फिर हम अपना आसमान खुद ढूंढ लेंगे। औरत होने के डर से तुम भी मुक्त हो जाओ और हमें भी मुक्त कर दो।"४ संघमित्रा के बार-बार समझाने पर भी धर्म अंधी और अवसरवादी माँ में विज्ञानं की जागरूकता संभव नहीं हो पाती है।

धार्मिक परिवेश में अज्ञान और अंधविश्वास के चलते लोगों में धर्म संस्कृति का चोला आडम्बर के सामान ही खोखला होता है। जैन धर्म के अहिंसा को प्रमोट करनेवाले जैन मुनि या साधु संत पशुओं और जानवरों की बलि के विरुद्ध आवाज नहीं उठाते है। यही इनका दोहरा व्यापारवादी और अवसरवादी चरित्र होता है। परिणामस्वरूप वर्धमान महावीर की अहिंसा का अर्थ जैन साधु और संतों ने अपने-अपने जरूरतों के हिसाब से लिया है। इसी दोहरी पाखंडी धार्मिक नीति का विरोध करती हुई लेखिका संघमित्रा द्वारा कहती है - "आप तो यह भी भूल गए गुरुदेव की महावीर ने अहिंसा को परम धर्म इसलिए कहा था, क्योंकि उस समय सामंती समाज में क्षत्रिय राजे-महाराजे अपने अहं के चलते अनावश्यक हिंसा में लिप्त रहते थे। इन खून खराबे को रोकने के लिए ही उन्हें अहिंसा को परम धर्म बनाना पड़ा। 'अपरिगृह' के महान उपदेश को आप ..... सुविधापूर्वक भूल गए और सिर्फ अहिंसा की पूँछ पकड़ आपने इसे ही चरम पर चढ़ा दिया।"५

महानगरों में जैन धर्म के महागुरूओं के द्वारा दीक्षांत समारंभों का आयोजन किया जाता है, ताकि बाल बच्चे-बच्चियाँ, साधु-साध्वी के रूप में दीक्षा ले सके। गरीब परिवारों के लोग अपने बच्चो तथा बच्चियों को साधु-साध्वी की दीक्षा लेने के लिए भेजते है; ताकि उनके परिवारों को आर्थिक लाभ मिल सके। जिन छोटे-छोटे बच्चों-बच्चियों को सन्यास मार्ग क्या होता है ? भोगवादी जीवन क्या होता है ? इसकी तनिक भी जानकारी नहीं होती है, लेकिन एक नए जीवन के आकर्षण के कारण वे सभी बालक-बालिकाएँ जैन मुनियों के द्वारा बड़े-बड़े महानगरीय धार्मिक सम्मेलनों दीक्षा लेते है। लेकिन जैसे-जैसे वे दीक्षांत साधु-साध्वियाँ युवा अवस्था में प्रवेश करने लगते है, तो उन्हें वैराग्य मार्ग से मन उड़ने लगता है और आम लोगों के समान भोगवादी जीवन जीने का आकर्षण होने लगता है। यानी यहाँ जैन धर्म का वैराग्य मार्ग असफल होता है। लेखिका ने यह विजयेंद्र मुनि और दिव्य प्रभा के माध्यम से समझाने की कोशिश की है। दोनों भी युवावस्था में साधु-साध्वी होने के बावजूद भी आकर्षित होते है। इसी भोगवादी जीवन के प्रति आकर्षित होकर साध्वी दिव्य प्रभा से विजयेंद्र मुनि कहता है - "नहीं जानता देवी मोक्ष्य सत्य है या नहीं; पर तुम सत्य हो, तुम्हारा सौंदर्य, उद्‌द्याम यौवन का यह आवेग, कामनाओं के ये फूल, यह परस्परता ऊर्जा स्वितकरता मिलन ..... यही सत्य है, जिसने एक झटके में सन्यास और इन्द्रियनि ग्रह के झूठे साम्राज्य को ढहा दिया।"६ अर्थात बिना स्त्री को जाने जीवन को संपूर्णता में नहीं माना जा सकता है। दोनों भी इस सन्यासी, वैरागी जीवन से पलायन करके भोगवादी जीवन को अपनाने की पूरी कोशिश करते है। इससे यह स्पष्ट होता है कि जैन धर्म का वैराग्य मार्ग दो प्रेमी को रोक नहीं सकता।

संक्षेप रूप में कहा जाये तो मधु काँकरिया लिखित 'सेज पर संस्कृत' यह उपन्यास जैन धर्म के आडम्बरों को परिलक्षित करता है। धर्म के नाम पर महानगरों में बड़ी ट्रस्ट बनवाकर उनके माध्यम से आम लोगों को और जरूरत मंदों को धर्म की दीक्षा देकर एक बड़ा व्यापरवादी धार्मिक उत्सव मना कर लोगों को ठगा जाता है। महागुरूओं के द्वारा, जैन धर्म के मूल सिद्धांतों से पलायन किया जाता है। इतना ही नहीं जिस अहिंसावादी और वैराग्यवादी जीवन का वास्ता जैन धर्म पूरी दुनियाँ को देता है, असल में वही विचार पलायवादी किस प्रकार दृष्टिगोचर हो रहे है। इसका तथ्यात्मक वर्णन तथा विश्लेषण लेखिका

वैज्ञानिक दृष्टिकोण के रूप में करती है। इसके पीछे लेखिका की भूमिका जैन धर्म को बदनाम करने की नहीं, अपितु धर्म के नाम पर चलता हुआ व्यापार और जैन मुनि वर्धमान के मूल सिद्धांतों से पलायन को लोगों के सामने लाना यही प्रमुख उद्देश्य था। क्योंकि धर्म मनुष्य के लिए मनुष्य धर्म के लिए नहीं। इसलिए समय के साथ धर्म में परिवर्तन होने के बजाय आडम्बरों को बढ़ाना यह नैतिकता से पलायन है। अतः 'सेज पर संस्कृत' धार्मिक आडंबरों को चित्रित करनेवाला समकालीन युगीन उपन्यास परंपरा में अपना अलग महत्व रखनेवाला मधु काँकरिया का उपन्यास है।

संदर्भ सूची :

1. http://smalochana.blogspat/in/2008/11/2008htm
2. मधु काँकरिया, सेज पर संस्कृत, राज कमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प. सं. २००८, पृ. क्र. १९
3. वहीपृ. १२०
4. वहीपृ. ५१
5. वहीपृ. १२१
6. वहीपृ. १८४